53वीं पुण्यतिथि पर विशेष

आम्बेडकर और स्वतंत्रता

जिस समाज में कुछ वर्गों के लोग जो कुछ चाहें वह सब कुछ कर सकें और बाकी वह सब भी न कर सकें जो उन्हें करना चाहिए, उस समाज के अपने गुण होते होंगे, लेकिन उनमें स्वतंत्रता शामिल नहीं होगी। अगर इंसानों के अनुरूप जीने की सुविधा कुछ लोगों तक ही सीमिति है, तब जिस सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना उचित है।

- डॉ. भीमराम आम्बेडकर

सम्भवत: हम सभी इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि भले ही हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, पर जिसे वास्तव में मुक्ति कहते हैं, वह अभी बाकी है। इसलिए, यकीनन हमें मुक्ति संग्राम की जरूरत है।

राष्ट्रीय आन्दोलन में, जिसे इतिहास में स्वतंत्रता-संग्राम कहा जाता है, स्वतंत्रता की अवधारणा स्पष्ट नहीं थी। वह वस्तुत: राजनैतिक स्वतंत्रता का आन्दोलन था, जिसमें डोमिनियम स्टेटस की मांग थी। पूर्ण स्वाधीनता की मांग कम से कम गोलमेज सम्मेलन के समय तक नहीं थी- यह एक स्वतंत्र उपनिवेश की मांग थी, इससे ज्यादा कुछ नहीं था। किंतु डॉक्टर आम्बेडकर की स्वतंत्रता की अवधारणा पूरी तरह स्पष्ट थी। वे दलित वर्ग से आए थे, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से भी गुलाम था। राष्ट्रीय आन्दोलन उन लोगों के हाथों में था, जिन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता की जरूरत थी। वे सामाजिक और आर्थिक रूप से गुलाम नहीं थे। उनके लिए समाज सुधार का अर्थ केवल बाल-विवाह, सती प्रथा और स्त्रियों की अशिक्षा को खत्म करना था। इसलिए जब कांग्रेस में राजनीतिक सुधार से पहले समाज-सुधार पर जोर दिया गया, तो बहुमत इसके विरुद्ध था। कांग्रेस के आठवें अधिवेशन में डब्लू सी बनर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में समाज सुधार का विरोध करते हुए कहा था 'क्या हम राजनैतिक सुधार के लिए इस कारण योग्य नहीं हैं कि हमारी विधवाएं अविवाहित रह जाती हैं और हमारी लड़कियों का बाल विवाह होता है? क्या ऐसा इसलिए है कि हमारी पत्नियां और हमारी लड़कियां हमारे साथ खुलकर हमारे दोस्तों से मिलने नहीं जातीं? क्या इसलिए कि हम अपनी लड़कियों को ऑक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज नहीं भेजते?' उनका कहना था कि यह कहना गलत है कि जब तक हम अपनी सामाजिक व्यवस्था नहीं सुधारते, तब तक हम राजनैतिक सुधार करने योग्य नहीं होंगे।

इससे यह समझा जा सकता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के हमारे नेता कितने व्यंग्यपूर्ण तरीके से समाज सुधार को ले रहे थे और मौजूदा समाज-व्यवस्था की यथाशक्ति के साथ ही राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अधीर हो रहे थे।

1920 के दशक में राष्ट्रीय आन्दोलन के ऐसे ही अधीर नेताओं से डॉ. आम्बेडकर ने पूछा था कि तब तुम्हारे राज में दलितों की क्या स्थिति होगी? क्या उन्हें भी सत्ता में भागीदारी मिलेगी या वे इसी तरह आपके हिन्दू राज में अछूत बने रहेंगे?

1927 में उन्होंने महाड़ में अछूत समुदाय से सवाल किया था कि क्या वे कट्टरपंथियों के राज को स्वीकार करने को तैयार हैं? क्या वे उच्चवर्ग के हाथों में अपना भविष्य सौंप सकते हैं? जवाब में पूरी सभा ने कहा था-नहीं। डॉ. आम्बेडकर ने जोर देकर कहा था-हमारे आन्दोलन का उद्देश्य सिर्फ यह नहीं है कि जो निर्योग्यताएं हम पर थोपी गई हैं, वे हट जाएं, बल्कि हम सामाजिक क्रांति चाहते हैं, एक ऐसी क्रांति, जिसमें नागरिक अधिकारों के मामले में आदमी और आदमी के बीच कोई भेद न किया जाए, सभी मनुष्यों को उच्चतम स्थान तक पहुंचने के लिए समान अवसर प्राप्त हों और जाति की कोई बाधा न रहे। इस प्रकार आम्बेडर राजनैतिक क्रांति से पहले सामाजिक क्रांति के पक्षधर थे। वे उन लोगों से सहमत नहीं थे, जो कहते थे कि राजनैतिक सत्ता मिलते ही हम समाज बदल देंगे। उनका तर्क था कि इंग्लैंड में लोकतंत्र इसलिए असफल हो गया था- क्योंकि कट्टरपंथियों के हाथों में था। इसलिए उनके लिए स्वराज्य महत्वपूर्ण नहीं था, महत्वपूर्ण था कि स्वराज्य किसके हाथों में होगा। आम्बेडकर ने यह बात 1943 में कही थी। सत्ता हस्तांतरण की तैयारियां चल रही थीं और 1947 में, ठीक चार साल बाद भारत आजाद हो गया था। यानी, आम्बेडकर स्पष्ट देख रहे थे कि स्वराज्य जिन हाथों में जाने वाला था, वे सामन्तों, पूंजीपतियों और कट्टरपंथियों के हाथ थे। इसलिए इसी समय मई 1943 में आम्बेडकर ने भारत के मजदूर नेताओं से कहा था कि अपने मतभेद भुला दें और एक साझा मोर्चा बना लें। उन्होंने उन्हें चेताया कि वे यह देखें कि स्वराज जब आए तो वह भारतीय मजदूरों के हाथों में आए। 11 मई 1943 के 'द बाम्बे क्रानिकल' की कटिंग है-"It was therefore, important in whose hands swaraj would be. He exhorted the labour leaders of India to see that when swaraj came it would be in the hands of Indian labour."

"दलित-वर्ग के संदर्भ में मुक्ति-संग्राम दो शक्तियों के विरुद्ध है। ये शक्तिया हैं- ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी। आम्बेडकर ने कहा था कि इस देश में मजदूर वर्ग के दो शत्रु हैं- ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद। उनके आलोचक, जिनमें समाजवादी मुख्य थे, ब्राह्मणों को मजदूरों के शत्रु के रूप में समझने में असफल हो गए थे। यदि उन्होंने इस शत्रु को समझ लिया होता, तो उनकी जंग कमजोर नहीं पड़ती और मजदूर एकता कभी की हो गई होती। आम्बेडकर ने कहा कि ब्राह्मणवाद ब्राह्मण समुदाय के विशेषाधिकारों या उसकी सत्ता का नाम नहीं है, बल्कि इसका अर्थ स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की भावना को नकारना है। और इस अर्थ में, उन्होंने कहा कि यह सभी वर्गों में मौजूद है और यहां तक कि मजदूर वर्ग में भी ब्राह्मणवाद मौजूद है। उन्होंने कहा कि यह बड़ा शत्रु है, जिसने आर्थिक अवसरों के क्षेत्र को प्रभावित किया है। आम्बेडकर ने कहा कि ब्राह्मणवाद से लड़ने के लिए मजदूरों में वर्ग-हित और वर्ग-चेतना विकसित करने की जरूरत है। उन्होंने दलित वर्गों से अपील की थी कि वे अब तक अपनी सामाजिक तकलीफों के हल के लिए आन्दोलन करते रहे हैं, परंतु अब उन्हें जाति के रूप में नहीं, एक मजदूर वर्ग के रूप में अपनी आर्थिक तकलीफों को दूर करने के लिए आन्दोलनरत होने की जरूरत है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दलित वर्गों की मुक्ति वर्ग-हित की लड़ाई में है, न कि जाति-हित में। जाति-हित ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद को ही मजबूत करता है, जबकि वर्ग-हित समाजवाद का रास्ता है। यही मुक्तिपथ है।"

स्थितियां बिगड़ गई थीं। राष्ट्रीय आन्दोलन सामन्तों और पूंजीपतियों के हाथों में था, जिसका नेतृत्व महात्मा गांधी कर रहे थे। सत्ता का हस्तान्तरण इसी वर्ग के हाथों में होने जा रहा था। दलित वर्ग के लिए यह असहनीय स्थिति थी। वह साम्प्रदायिक प्रश्न था-जिसे कांग्रेस और हिन्दू नेताओं ने बहुमत का प्रश्न बना दिया था। सवाल यह था कि क्या बहुमत का शासन सही है? आम्बेडकर का कहना था-नहीं। उन्होंने कहा कि यह विचार गलत है कि राज्य की आवश्यकताएं सर्वोपरि हैं और व्यक्ति की नहीं, यह एक फासिस्ट या नाजी सिद्धांत है। उन्होंने कहा कि व्यक्ति का संरक्षण राज्य की मूल चिंता है और इसका दमन बर्दाश्त नहीं किया जाएगा।

उन्होंने बहुमत के बारे में कहा कि इसे राजनैतिक और साम्प्रदायिक आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। राजनैतिक बहुमत बदलता रहता है। बहुमत का यह तरीका मान्य है। पर जन्म-आधारित बहुमत मान्य नहीं है। 1945 में की गई उनकी यह टिप्पणी वर्गीय दृष्टिकोण से भारतीय राजनीति में आज भी गलत नहीं है।

उन्होंने कहा था कि यदि मजदूर वर्ग के हाथों में सत्ता नहीं आई, तो शासक वर्ग और प्रजा वर्ग इसी तरह बने रहेंगे, तब हम यह कैसे कह सकते हैं कि स्वतंत्र भारत की सरकार मौजूदा ब्रिटिश सरकार से बेहतर हो सकती है।

1943 में भारतीय मजदूर संघ द्वारा आयोजित एक चिंतन शिविर में उन्होंने कहा कि मजदूरों का अंतिम और मुख्य लक्ष्य सिर्फ ट्रेड यूनियनों की स्थापना करना भर नहीं होना चाहिए। उनका कहना था कि मजदूर यह भी घोषणा करें कि उन्हें सरकार पर कब्जा करना है। वे यह नहीं चाहते थे कि मजदूर संगठन सिर्फ ट्रेड यूनियनों में बदल जाएं। उन्होंने मजदूर संगठनों से अपील की थी कि वे कांग्रेस और हिन्दू महासभा दोनों से अलग रहकर आजादी की लड़ाई लड़ें, जो वे बेहतर लड़ सकते हैं। इसी चिंतन शिविर में उन्होंने मजदूरों को यह सलाह दी थी कि वे रूसो के 'सोशल कान्ट्रैक्ट', मार्क्स के 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र', मजदूरों की दशा पर लियो तेरहवें का परिपत्र और जॉन स्टुअर्ट मिल की 'लिबर्टी' को पढ़ें, न कि राजा-रानियों की झूठी और काल्पनिक कहानियों से खुश होते रहें।

आम्बेडकर फ्रेंच क्रांति से बहुत प्रभावित थे। वे इस क्रांति की जड़ों में उस नई व्यवस्था को देखते थे, जो मजदूर वर्ग की आदर्श व्यवस्था है। वे कहते हैं कि फ्रेंच क्रांति ने दो सिद्धांत दिए - स्व-शासन और स्व-निर्णय। स्व-शासन या स्वराज का सिद्धांत लोगों में स्वयं शासन करने की इच्छा पैदा करता है, बजाय इसके कि दूसरे लोग उन पर शासन करें, चाहे वे दूसरे लोग राजे हों, तानाशाह हों या विशेषाधिकार प्राप्त विशिष्ट वर्ग। इसी को डॉ. आम्बेडकर ने 'जनतंत्र' कहा। जनतंत्र में स्व-निर्णय की स्वाधीनता है। उन्होंने कहा कि स्वाधीनता का अर्थ इसके सिवा कुछ नहीं है कि राष्ट्र को अपनी सरकार और समाज व्यवस्था के बनाने में स्वयं फैसला करने की स्वतंत्रता हो, बाहर का कोई दबाव उस पर न हो। उन्होंने कहा कि यदि सरकार का निर्णय और समाज-व्यवस्था दोनों मजदूरों के हितों के खिलाफ है, तो ऐसी स्वाधीनता का कोई मूल्य नहीं है। आम्बेडकर ने नाजी व्यवस्था के खिलाफ विश्वयुद्ध (1943) को लोकयुद्ध कहा था। उस समय वामपंथियों ने भी इसे पहचानने में भूल की थी। पर आम्बेडकर का कहना था कि यह युद्ध यदि नाजीवाद के खिलाफ है, तो यह लड़ाई पुरानी व्यवस्था के लिए नहीं है। उन्होंने कहा कि यह लड़ाई मजदूर वर्ग को स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता की नई व्यवस्था प्रदान करेगी।

जो लोग दलितवाद या जातिवाद के चश्मे से आम्बेडकर को देखने के आदी हैं, उन्हें यह देखकर आश्चर्य हो सकता है कि आम्बेडकर देश का नेतृत्व मजदूर वर्ग के हाथों में देना चाहते थे। उनके शब्द सुनिए, 'देश को जिस नेतृत्व की जरूरत है उसे सिर्फ मजदूर ही देने में सक्षम हैं।' उन्होंने कहा कि सही नेतृत्व के लिए आदर्शवाद और मुक्त विचार की जरूरत होती है। आदर्शवाद अभिजात वर्ग के लिए संभव है। उन्होंने कहा कि मध्यवर्ग के लिए कुछ भी संभव नहीं है, न आदर्शवाद न स्वतंत्र विचार। उसमें नई व्यवस्था के लिए कोई भूख नहीं होती, जबकि यही वह आशा है जिस पर मजदूर वर्ग जिंदा रहता है। आम्बेडकर के आन्दोलन का अर्थ था जाति-विहीन और वर्ग-विहीन समाज का निर्माण। वे जनतंत्र के प्रबल समर्थक थे और जनतंत्र के द्वारा ही सामाजिक क्रांति चाहते थे। उन्हें तानाशाही पसंद नहीं थी, चाहे वह किसी वर्ग या व्यक्ति की हो।

जब भारत को आजादी मिलने में कुछ ही महीने रह गए थे- मार्च 1947 में आम्बेडकर ने मांग की थी कि भारत का जो भावी संविधान बनाया जाना है, उसमें देश का राजनैतिक ढांचा ही कानून द्वारा निर्धारित न किया जाए, वरन् समाज के आर्थिक ढांचे के स्वरूप को भी कानून द्वारा स्थापित किया जाए। इसे केवल विधायिका की मर्जी पर न छोड़ा जाए। उन्होंने कहा कि यह मूल अधिकारों का प्रश्न नहीं है, बल्कि समाज के आर्थिक जीवन का प्रश्न है।

उन्होंने कहा कि यह ढांचा राज्य-समाजवाद का होना चाहिए। वे भारत के तीव्र औद्योगिकरण के लिए राज्य-समाजवाद को आवश्यक मानते थे। उनका कहना था कि निजी उद्यम यह काम नहीं कर सकते और यदि कर भी सकें तो वे सम्पत्ति की उन्हीं विषमताओं को पैदा करेंगे, जिन्हें यूरोप में निजी पूंजीवाद ने उत्पन्न किया है और जो भारतीयों के लिए एक चेतावनी होनी चाहिए।

यह था दलित वर्ग का मुक्ति-संग्राम, जिसका नेतृत्व डॉ. आम्बेडकर कर रहे थे। आज जिस तरह पूंजीवाद का तेजी से विकास हो रहा है, उसे देखकर लगता है कि आम्बेडकर से मुक्ति-संग्राम को तेज करने की जरूरत है।

यहां राज्य-समाजवाद पर थोड़ी चर्चा जरूरी है। मार्क्सवाद के साथ यहां कुछ असहमति है। मार्क्सवाद राज्य को नकारता है। पर आम्बेडकर राज्य की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे राज्य के संविधान द्वारा स्थापित समाजवाद के पक्षधर हैं। उनकी दृष्टि से राजनैतिक हस्तक्षेप अथवा राज्य के नियंत्रण से मुक्त निजी मालिकों या पूंजीपतियों की तानाशाही के सिवा कुछ नहीं है। वे राज्य-समाजवाद को संसदीय लोकतंत्र के साथ और बिना तानाशाही के स्थापित करना चाहते थे। यह संतोष का विषय है कि भारत के वामपंथियों ने आम्बेडकर के इस रास्ते को स्वीकार कर लिया है। वे राज्य की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं और संसद और विधानसभा का चुनाव लड़ते हैं। वे भी अब संसदीय लोकतंत्र के साथ समाजवाद चाहने लगे हैं। लेकिन अभी भी एक समस्या है, ओर वह यह है कि हमारा मौजूदा संविधान समाजवाद की स्थापना के कार्य को विधायिका पर छोड़ देता है, जबकि विधायिका यदि पूंजीपतियों और उनके प्रतिनिधियों का बहुमत है, तो वह अपनी कानून बनाने वाली शक्ति का उपयोग समाजवाद की स्थापना के विरुद्ध करेगी। इसलिए राज्य-समाजवाद की संविधान द्वारा स्थापना तभी हो सकती है, जब संसद या विधायिका में समाजवादियों और मजदूर वर्ग के प्रतिनिधियों का बहुमत आएगा।

दलित-वर्ग के संदर्भ में मुक्ति-संग्राम दो शक्तियों के विरुद्ध है। ये शक्तियां हैं- ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी। आम्बेडकर ने कहा था कि इस देश में मजदूर वर्ग के दो शत्रु हैं- ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद। उनके आलोचक, जिनमें समाजवादी मुख्य थे, ब्राह्मणों को मजदूरों के शत्रु के रूप में समझने में असफल हो गए थे। यदि उन्होंने इस शत्रु को समझ लिया होता, तो उनकी जंग कमजोर नहीं पड़ती और मजदूर एकता कभी की हो गई होती। आम्बेडकर ने कहा कि ब्राह्मणवाद ब्राह्मण समुदाय के विशेषाधिकारों या उसकी सत्ता का नाम नहीं है, बल्कि इसका अर्थ स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व की भावना को नकारना है। और इस अर्थ में, उन्होंने कहा कि यह सभी वर्गों में मौजूद है और यहां तक कि मजदूर वर्ग में भी ब्राह्मणवाद मौजूद है। उन्होंने कहा कि यह बड़ा शत्रु है, जिसने आर्थिक अवसरों के क्षेत्र को प्रभावित किया है।

आम्बेडकर ने कहा कि ब्राह्मणवाद से लड़ने के लिए मजदूरों में वर्ग-हित और वर्ग-चेतना विकसित करने की जरूरत है। उन्होंने दलित वर्गों से अपील की थी कि वे अब तक अपनी सामाजिक तकलीफों के हल के लिए आन्दोलन करते रहे हैं, परंतु अब उन्हें जाति के रूप में नहीं, एक मजदूर वर्ग के रूप में अपनी आर्थिक तकलीफों को दूर करने के लिए आन्दोलनरत होने की जरूरत है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दलित वर्गों की मुक्ति वर्ग-हित की लड़ाई में है, न कि जाति-हित में। जाति-हित ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद को ही मजबूत करता है, जबकि वर्ग-हित समाजवाद का रास्ता है। यही मुक्तिपथ है। और इस अर्थ में हम आम्बेडकर को अपने समय का सबसे बड़ा कम्युनिस्ट मान सकते हैं, जिन्होंने दलित-सर्वहारा की मुक्ति के लिए समाजवाद की लड़ाई लड़ी। ◻ ◻